



**अन्तरा
शब्दशक्ति**

प्रकाशन एवं बहुउद्देशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

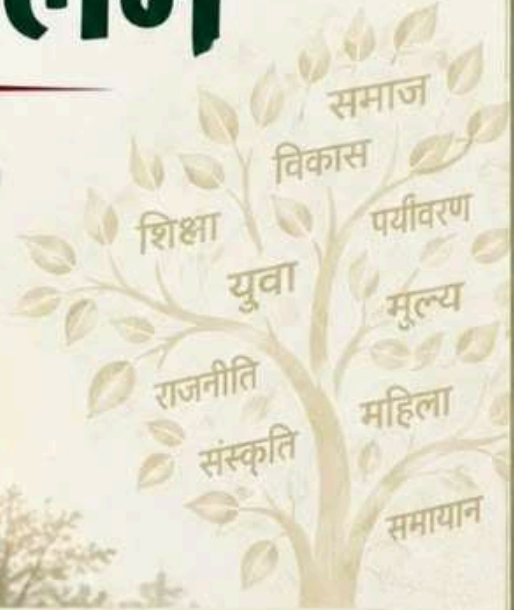
शब्द
से संवेदना तक...
लेखन से
परिवर्तन तक...

हिन्दी
हमारी पहचान
हमारी शक्ति

‘समसामयिक प्रश्नों पर आपकी कलम’

विचार...
चिंतन...
संवाद...
और
एक बेहतर
कल की ओर...

(लेख प्रतियोगिता)



रचनाकार :-

डॉ. शुद्धात्म प्रकाश जैन...

विचारों की
स्याही से
बदलता समाज...

आयोजक:-

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी (म.प्र.)



**अन्तरा
शब्दशक्ति**

प्रकाशन एवं बहुददेशीय संस्था
www.antrashabdshakti.com

**हिन्दी
हमारी पहचान
हमारी शक्ति**

शब्द से संवेदन तक...
लेखन से परिवर्तन तक...

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

संपादक : डॉ. प्रीति समकित सुराना
तकनीकी संपादक : Webcoodee.com
मुख्य कार्यालय : 15 नेहरू चौक, वारासिवनी,
जिला बालाघाट (म.प्र.) 481331



Antrashabdshaktiprakashan

संपर्क : 9009423393
ईमेल : antrashabdshakti@gmail.com
वेबसाइट : www.antrashabdshakti.com

वैधानिक सूचना

पुस्तक में प्रकाशित सभी रचनाएँ संबंधित रचनाकारों की मौलिक अभिव्यक्तियाँ हैं।
प्रत्येक रचना में व्यक्त विचार, कथ्य एवं अभिमत के लिए संबंधित रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं।
रचनाओं के चयन एवं प्रकाशन का उद्देश्य साहित्यिक अभिव्यक्ति को मंच प्रदान करना
एवं हिन्दी लेखन को प्रोत्साहित करना है।

हिन्दी
से ही है
पहचान...

विचार...
संवाद...
समाज...
और एक बेहतर कल...

लेख प्रतियोगिता

लेखक/लेखिका - डॉ. शुद्धात्म प्रकाश जैन

आज की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या:

AI, प्राइवैसी और टूटते पारिवारिक बंधन



आज की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या: AI, प्राइवेसी और टूटते पारिवारिक बंधन

भूमिका

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका अस्तित्व, उसकी पहचान और उसका सुख-दुख सदैव दूसरों के साथ बंधे रहे हैं। भारतीय संस्कृति में परिवार को केवल रक्त-सम्बन्ध की इकाई नहीं, बल्कि संस्कार, स्नेह, सुरक्षा और सहअस्तित्व का आधार माना गया है। संयुक्त परिवार की परम्परा में दादा-दादी की कहानियाँ, माता-पिता का मार्गदर्शन और भाई-बहनों का साथ किसी भी बच्चे के व्यक्तित्व-निर्माण की नींव हुआ करते थे। किन्तु इक्कीसवीं सदी के तीसरे दशक में प्रवेश करते-करते यह चित्र तेज़ी से बदल गया है। आज हर हाथ में स्मार्टफोन है, हर आँख स्क्रीन में उलझी है और हर मन किसी आभासी संसार में विचरण कर रहा है। परिणामस्वरूप एक ऐसा विरोधाभास उत्पन्न हो गया है जिसमें व्यक्ति भौतिक रूप से परिवार के बीच बैठा होकर भी मानसिक रूप से मीलों दूर है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) और डिजिटल प्रौद्योगिकी ने जीवन को जितनी सुविधाएँ दी हैं, उतनी ही गहरी दूरियाँ भी पारिवारिक सम्बन्धों में उत्पन्न कर दी हैं। यह निबंध इसी विडम्बना का विश्लेषण करने का प्रयास है—कि कैसे तकनीक ने बच्चों को "प्राइवेसी" के नाम पर एकाकी बनाया, कैसे परिवार के सदस्य परस्पर अजनबी होते जा रहे हैं, और इस संकट से उबरने का मार्ग क्या हो सकता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल जीवनशैली का प्रभाव

इस पारिवारिक अलगाव के अनेक कारण हो सकते हैं—बदलती जीवनशैली, आर्थिक दबाव, शहरीकरण, एकल परिवारों का बढ़ता प्रचलन—परन्तु इन सबमें सर्वाधिक निर्णायक भूमिका कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल तकनीक की है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता केवल कंप्यूटर विज्ञान की एक शाखा नहीं रह गई, अपितु वह हमारी सोच, हमारी पसंद, हमारे निर्णय और हमारे समय के उपयोग की दिशा तय करने वाली एक अदृश्य शक्ति बन चुकी है। एल्गोरिद्म हमें वही दिखाते हैं, जिसमें हमारी रुचि हो सकती है, और इस प्रकार हमें एक ऐसे आभासी बुलबुले (echo chamber) में बंद कर देते हैं, जहाँ से निकलना कठिन होता जाता है। घंटों रील और शॉर्ट वीडियो स्कॉल करना अब सामान्य बात बन गई है, जिसका सीधा दुष्प्रभाव मस्तिष्क की एकाग्रता क्षमता पर पड़ रहा है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन बताते हैं कि निरंतर छोटी-छोटी सूचनाओं और मनोरंजक सामग्री के उपभोग से मस्तिष्क की डोपामिन प्रणाली प्रभावित होती है। जब व्यक्ति को हर कुछ सेकंड में नई उत्तेजना मिलती रहती है, तो उसकी सहनशक्ति और धैर्य क्रमशः कम होते जाते हैं। परिणामस्वरूप वह किसी भी कार्य में—चाहे वह पढ़ाई हो, कार्यालयीन कार्य हो, या पारिवारिक संवाद हो—लम्बे समय तक ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। यही कारण है कि आज विद्यार्थियों में एकाग्रता की कमी एक गम्भीर समस्या के रूप में उभर रही है। पढ़ाई के प्रति रुचि घटी है, पुस्तकों को पढ़ने का धैर्य समाप्त होता जा रहा है, और ज्ञानार्जन की प्रक्रिया सतही होती जा रही है। विद्यार्थी गहन अध्ययन के स्थान पर त्वरित उत्तर खोजने की प्रवृत्ति अपनाते जा रहे हैं, जिससे उनकी विश्लेषणात्मक और चिंतनशील क्षमता कुंठित हो रही है।

इसके अतिरिक्त, कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरणों ने संवाद की प्रकृति को भी बदल दिया है। पहले जहाँ किसी समस्या के समाधान के लिए बड़ों से परामर्श लिया जाता था, आज वही परामर्श किसी चैटबॉट या सर्च इंजन से लिया जाता है। यह तकनीकी सुविधा भले ही तात्कालिक समाधान दे दे, परन्तु इससे पीढ़ियों के बीच का अनुभव-हस्तांतरण बाधित हो रहा है।

बुजुर्गों का अनुभव, उनकी जीवन-दृष्टि और उनकी सीख धीरे-धीरे अप्रासंगिक होती जा रही है, क्योंकि नई पीढ़ी को लगता है कि प्रत्येक प्रश्न का उत्तर एक क्लिक की दूरी पर उपलब्ध है। यह भ्रम अत्यंत घातक है, क्योंकि तकनीक सूचना तो दे सकती है, परन्तु जीवन-अनुभव और भावनात्मक समझ नहीं दे सकती।

सोशल मीडिया: आभासी जुड़ाव, वास्तविक दूरी

सोशल मीडिया के आगमन ने संचार क्रांति ला दी। आज एक क्लिक पर हजारों मील दूर बैठे व्यक्ति से जुड़ा जा सकता है, सूचनाएँ क्षण भर में साझा की जा सकती हैं। परन्तु इसका दूसरा पक्ष अत्यंत चिंताजनक है। आज व्यक्ति के सोशल मीडिया खातों पर हजारों "मित्र" और "अनुयायी" हो सकते हैं, परन्तु वास्तविक जीवन में उसके पास बात करने के लिए, अपने मन की पीड़ा साझा करने के लिए एक सच्चा मित्र भी नहीं होता। यह विरोधाभास आधुनिक समाज की सबसे बड़ी विडंबनाओं में से एक है। आभासी संसार में जुड़ाव की संख्या तो बढ़ी है, परन्तु सम्बन्धों की गहराई घटी है। मित्रता अब गुणवत्ता से नहीं, संख्या से आँकी जाने लगी है।

सोशल मीडिया पर हम प्रायः अपने जीवन का केवल वह पक्ष प्रस्तुत करते हैं, जो आकर्षक, सफल और सुखी प्रतीत हो। हँसता हुआ चेहरा, सुंदर स्थानों की तस्वीरें, महँगे उपहार, उत्सव के क्षण—यही सब पोस्ट किया जाता है। परन्तु उस मुस्कुराते चेहरे के पीछे कितनी उदासीनता, कितना संघर्ष और कितनी अकेली रातें छिपी होती हैं, इसका अनुमान कोई नहीं लगा पाता। हजारों तस्वीरों में से केवल सबसे अच्छी तस्वीर को चुनकर सार्वजनिक किया जाता है, जिससे देखने वालों के मन में यह भ्रम उत्पन्न होता है कि दूसरों का जीवन उनके अपने जीवन से कहीं अधिक सुखी और संपन्न है। यह तुलनात्मक मनोवृत्ति ईर्ष्या, द्वेष और आत्म-असंतोष को जन्म देती है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे "सोशल कम्पैरिजन सिंड्रोम" की संज्ञा दी है, जो विशेषकर किशोरों और युवाओं में अवसाद तथा चिंता के लक्षणों को बढ़ावा देता है।

इसके साथ ही एक और गंभीर प्रवृत्ति उभरी है—नकारात्मकता का तीव्र प्रसार। मनोविज्ञान का सामान्य नियम है कि नकारात्मक समाचार, विवादास्पद टिप्पणियाँ और विध्वंसात्मक सामग्री सकारात्मक और रचनात्मक सामग्री की अपेक्षा अधिक तीव्रता से फैलती हैं, क्योंकि वे अधिक भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं।

इसी कारण सोशल मीडिया एल्गोरिद्म भी ऐसी सामग्री को अधिक प्राथमिकता देते हैं जो विवाद, आक्रोश या सनसनी उत्पन्न करे। परिणामस्वरूप अच्छी और सकारात्मक बातें प्रायः अनदेखी रह जाती हैं या सीमित लोगों तक ही पहुँच पाती हैं, जबकि बुराई, अफवाह और नकारात्मक सामग्री तीव्र गति से बहुगुणित (मल्टीप्लाई) होती जाती है। इस प्रवृत्ति का दीर्घकालिक प्रभाव सामाजिक मानसिकता पर अत्यंत विनाशकारी सिद्ध हो रहा है, क्योंकि लगातार नकारात्मक सामग्री के संपर्क में रहने से व्यक्ति का विश्वदृष्टिकोण निराशावादी होता जाता है।

दिखावे की संस्कृति और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव

आज की पीढ़ी "दिखावे की जिंदगी" जीने के लिए विवश होती जा रही है। हर घटना, हर उपलब्धि, हर यात्रा को सोशल मीडिया पर प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गई है कि प्रायः वह घटना जीने से अधिक महत्वपूर्ण उसे "दिखाना" हो गया है। एक सुंदर दृश्य देखकर पहला विचार उसे अनुभव करने का नहीं, बल्कि उसकी तस्वीर लेकर पोस्ट करने का आता है। इस प्रकार वास्तविक अनुभव आभासी प्रदर्शन में बदल जाता है, और जीवन की सहजता तथा आनंद क्षीण होते जाते हैं।

इस दिखावे की संस्कृति का सबसे गंभीर दुष्परिणाम मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। निरंतर स्वयं की तुलना दूसरों के "आदर्श जीवन" से करना, आत्म-सम्मान की कमी, चिंता, अवसाद और अकेलेपन की भावना—ये सभी लक्षण आज युवाओं में तेज़ी से बढ़ रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन सहित अनेक अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने समय-समय पर यह चेतावनी दी है कि अत्यधिक स्क्रीन-समय और सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग का सीधा सम्बन्ध किशोरों में बढ़ते मानसिक तनाव से है। जब कोई व्यक्ति वास्तविक जीवन में अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाता और केवल आभासी संसार में प्रशंसा (लाइक्स और कमेंट्स) की तलाश करता है, तो उसका आत्मबल धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है। यह स्थिति अत्यंत विडम्बनापूर्ण है—जिस तकनीक का उद्देश्य लोगों को जोड़ना था, वही आज उन्हें भीतर से अकेला बना रही है।

बच्चों और युवाओं पर प्रभाव: शिक्षा, एकाग्रता और मूल्य-निर्माण

बच्चों और किशोरों पर इस डिजिटल परिवर्तन का प्रभाव सर्वाधिक गहरा है, क्योंकि उनका मस्तिष्क अभी विकासशील अवस्था में होता है और वे सबसे अधिक प्रभावशील होते हैं। आज छोटे बच्चों के हाथों में भी स्मार्टफोन थमा दिया जाता है, प्रायः इसलिए कि वे शांत रहें और माता-पिता को अपने कार्यों के लिए समय मिल सके। परन्तु इस सुविधा की कीमत बहुत बड़ी है। बचपन से ही स्क्रीन के आदी हो चुके बच्चों में वास्तविक खेल-कूद, सामाजिक संपर्क और रचनात्मक गतिविधियों के प्रति रुचि घटती जा रही है। शारीरिक गतिविधियों की कमी से स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ भी बढ़ रही हैं, जैसे मोटापा, दृष्टि-दोष और नींद की समस्याएँ।

शैक्षणिक क्षेत्र में भी इसका गंभीर प्रभाव देखा जा रहा है। शिक्षक बताते हैं कि आज विद्यार्थियों की पढ़ने और लिखने की क्षमता में गिरावट आई है। लम्बे पाठ पढ़ने का धैर्य नहीं रहा, हस्तलेखन में कमजोरी आई है, और स्मरण-शक्ति भी प्रभावित हुई है, क्योंकि हर जानकारी के लिए इंटरनेट पर निर्भरता बढ़ गई है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए आवश्यक ज्ञान भी अब गहन अध्ययन के बजाय त्वरित सर्च और शॉर्टकट विधियों से प्राप्त किया जाता है। इससे विद्यार्थियों की मौलिक चिंतन-शक्ति और समस्या-समाधान क्षमता प्रभावित हो रही है।

इसके अतिरिक्त, बच्चों के मूल्य-निर्माण की प्रक्रिया में भी बाधा आ रही है। परम्परागत रूप से नैतिक शिक्षा परिवार और समाज से मिलती थी—दादा-दादी की कहानियों से, माता-पिता के व्यवहार से और सामुदायिक अनुभवों से। परन्तु आज बच्चे अपने मूल्य और आदर्श सोशल मीडिया के प्रभावशाली व्यक्तियों (इन्फ्लुएंसर्स) से ग्रहण कर रहे हैं, जिनकी विश्वसनीयता और नैतिकता संदिग्ध हो सकती है। यह स्थिति चिंताजनक है, क्योंकि बिना उचित मार्गदर्शन के प्राप्त मूल्य-प्रणाली अक्सर भ्रामक और सतही होती है।

साइबर अपराध, धोखाधड़ी और अविश्वास का वातावरण

डिजिटल युग का एक और गंभीर पक्ष है साइबर अपराधों में अभूतपूर्व वृद्धि। आज इंटरनेट और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकों का दुरुपयोग करते हुए ठगों ने धोखाधड़ी के नित नए तरीके ईजाद कर लिए हैं। फर्जी कॉल, फिशिंग संदेश, डीपफेक वीडियो, नकली पहचान बनाकर की जाने वाली धोखाधड़ी—इन सबने आम नागरिकों के जीवन में असुरक्षा की भावना भर दी है। सबसे विचलित करने वाली बात यह है कि अब यह निश्चित करना अत्यंत कठिन हो गया है कि स्क्रीन के उस पार बैठा व्यक्ति वास्तव में वही है, जो वह होने का दावा कर रहा है। आवाज़ की नकल करने वाली तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता से निर्मित चेहरे इतने वास्तविक प्रतीत होते हैं कि निकटतम परिजन भी धोखा खा सकते हैं।

इस अनिश्चितता ने समाज में एक व्यापक अविश्वास का वातावरण उत्पन्न कर दिया है। जहाँ पहले अनजान व्यक्ति पर भी एक सीमा तक विश्वास किया जा सकता था, वहीं आज हर सूचना, हर कॉल, हर संदेश को संदेह की दृष्टि से देखना आवश्यक हो गया है। यह मानसिक स्थिति, यद्यपि सतर्कता की दृष्टि से आवश्यक है, परन्तु सामाजिक सौहार्द के लिए हानिकारक भी है, क्योंकि अत्यधिक संदेह स्वस्थ सम्बन्धों के निर्माण में बाधा उत्पन्न करता है।

इसके साथ ही, सोशल मीडिया पर अपराध के तरीकों का प्रसार भी एक गंभीर समस्या बनकर उभरा है। पहले किसी अपराध की विधि या तकनीक सीमित लोगों तक ही ज्ञात होती थी, परन्तु आज वीडियो और पोस्ट के माध्यम से वह तकनीक क्षण भर में लाखों लोगों तक पहुँच जाती है। इस प्रकार, अनजाने में ही सोशल मीडिया अपराध के प्रसार का एक माध्यम बन जाता है। यह विडम्बना है कि जिस तकनीक का उद्देश्य जागरूकता फैलाना था, वह कई बार अपराध की शिक्षा का माध्यम भी बन जाती है।

वित्तीय धोखाधड़ी के अतिरिक्त, पहचान की चोरी और गोपनीयता के उल्लंघन की घटनाएँ भी निरंतर बढ़ रही हैं। लोगों की व्यक्तिगत जानकारी, तस्वीरें और यहाँ तक कि आवाज़ के नमूने भी बिना उनकी अनुमति के तकनीकी रूप से प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जिससे प्रतिष्ठा और सामाजिक सम्मान को गंभीर क्षति पहुँचने का खतरा उत्पन्न हो गया है।

वरिष्ठ नागरिक, जो तकनीकी रूप से उतने दक्ष नहीं होते, इस प्रकार की धोखाधड़ी के सबसे सुगम शिकार बनते जा रहे हैं। परिवार से दूर, अकेले रहने वाले वृद्धजन प्रायः भावनात्मक अकेलेपन का लाभ उठाकर ठगे जाते हैं, जो पुनः उसी मूल समस्या—पारिवारिक दूरी और संवादहीनता—की ओर संकेत करता है। यह स्पष्ट है कि साइबर अपराध और पारिवारिक अलगाव परस्पर गुँथी हुई समस्याएँ हैं, जिनका समाधान भी संयुक्त रूप से ही खोजा जाना चाहिए।

संवेदनशीलता का ह्रास और नैतिक पतन

इस सम्पूर्ण परिवर्तन का सबसे मार्मिक और चिंताजनक पक्ष है मानवीय संवेदनशीलता का क्रमिक ह्रास। कुछ दशक पूर्व तक स्थिति यह थी कि किसी के रोने मात्र से आसपास के लोग विचलित हो जाते थे, भोजन त्याग देते थे और उसकी पीड़ा में सहभागी बन जाते थे। मानवीय सहानुभूति और करुणा का यह भाव सामाजिक ताने-बाने की आधारशिला हुआ करता था। परन्तु आज की स्थिति अत्यंत भिन्न और विचलित करने वाली है। हिंसा और अपराध के दृश्य निरंतर स्क्रीन पर देखते रहने से मनुष्य की संवेदनशीलता कुंद होती जा रही है। यह अत्यंत चिंताजनक है कि आज ऐसे उदाहरण भी सामने आते हैं, जहाँ किसी घोर अपराध के प्रत्यक्षदर्शी होने के बावजूद, या ऐसी घटनाओं के विस्तृत विवरण जानने के बावजूद भी, व्यक्ति के दैनिक जीवन-क्रम, यहाँ तक कि भोजन ग्रहण करने की सामान्य प्रक्रिया, में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता। यह असंवेदनशीलता स्वयं में एक सामाजिक व्याधि का लक्षण है।

इसका मूल कारण है—हिंसा, अपराध और नकारात्मक सामग्री का अत्यधिक और निरंतर संपर्क। मनोविज्ञान में इसे "डिसेंसिटाइजेशन" (संवेदनहीनता) की प्रक्रिया कहा जाता है, जिसमें बार-बार किसी उत्तेजक दृश्य के संपर्क में आने से मस्तिष्क धीरे-धीरे उसके प्रति प्रतिक्रिया देना बंद कर देता है। जो दृश्य पहली बार देखने पर विचलित करता था, वही सौवीं बार देखने पर सामान्य प्रतीत होने लगता है। यह प्रक्रिया व्यक्तिगत स्तर पर तो हानिकारक है ही, सामाजिक स्तर पर इसके परिणाम और भी विनाशकारी हैं, क्योंकि एक असंवेदनशील समाज करुणा, सहानुभूति और परस्पर सहयोग की भावना खो बैठता है, जो किसी भी सभ्य समाज की आधारशिला होती है।

एक तुलनात्मक चिंतन: कल और आज

यदि हम पिछली और वर्तमान पीढ़ी के बचपन की तुलना करें, तो अंतर अत्यंत स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है। पिछली पीढ़ी का बचपन गली-मोहल्लों में खेले जाने वाले खेलों, पड़ोसियों के साथ साझा किए गए दुःख-सुख, और सीमित परन्तु सघन मित्रताओं से समृद्ध था। मनोरंजन के साधन सीमित थे, परन्तु कल्पनाशीलता असीमित थी। एक साधारण गेंद, कुछ पत्थर अथवा रस्सी से घंटों का आनंद लिया जा सकता था, और इन खेलों के माध्यम से सहयोग, टीम-भावना तथा हार-जीत को सहजता से स्वीकार करने का सामर्थ्य स्वाभाविक रूप से विकसित होता था। आज के बच्चे तकनीकी दृष्टि से कहीं अधिक जागरूक और सूचना-सम्पन्न अवश्य हैं, परन्तु प्रत्यक्ष सामाजिक कौशल, धैर्य और भावनात्मक सहनशीलता के मामले में वे कहीं अधिक कमज़ोर दिखाई देते हैं। यह तुलना किसी पीढ़ी को श्रेष्ठ अथवा निम्न सिद्ध करने के लिए नहीं, अपितु यह समझने के लिए आवश्यक है कि विकास की प्रक्रिया में हमने क्या पाया और क्या खोया। सच्ची प्रगति वही है, जिसमें भौतिक व तकनीकी उन्नति के साथ-साथ भावनात्मक और सामाजिक कौशल भी संरक्षित रहें।

भारतीय दृष्टिकोण से चिंतन

भारतीय दर्शन और संस्कृति सदैव "वसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानने की शिक्षा देती रही है। "अतिथि देवो भव" जैसे आदर्श वाक्य आतिथ्य और मानवीय सम्बन्धों की गहराई को दर्शाते हैं। हमारे धर्मग्रंथों और परम्पराओं में सत्संग, स्वाध्याय और सामूहिक साधना को आत्मिक उन्नति का मार्ग बताया गया है। जैन दर्शन में तो अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांतवाद के सिद्धांत विशेष रूप से इस बात पर बल देते हैं कि मनुष्य को संयम, संतुलन और सम्यक् दृष्टि के साथ जीवन जीना चाहिए। अपरिग्रह का सिद्धांत केवल भौतिक वस्तुओं के संग्रह तक सीमित नहीं, अपितु यह मानसिक और भावनात्मक अतिरेक से मुक्ति की भी शिक्षा देता है—और आज की डिजिटल-आसक्ति, जो एक प्रकार का मानसिक परिग्रह ही है, इसी सिद्धांत के विपरीत जाती प्रतीत होती है।

अनेकांतवाद हमें सिखाता है कि किसी भी विषय को केवल एक दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए। इसी दृष्टि से यदि हम तकनीक को देखें, तो यह स्पष्ट होता है कि तकनीक स्वयं में न तो पूर्णतः बुरी है और न पूर्णतः अच्छी—यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम उसका उपयोग किस प्रकार, किस मात्रा में और किस उद्देश्य से करते हैं। संयम (सम्यक् चारित्र्य) का सिद्धांत हमें यह सिखाता है कि किसी भी साधन का अतिरेक विनाशकारी होता है, चाहे वह भोजन हो, धन हो, अथवा तकनीक। यही सिद्धांत आज के डिजिटल युग में सर्वाधिक प्रासंगिक है।

तकनीक का सकारात्मक पक्ष और संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता

इस सम्पूर्ण विवेचन का यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता अथवा डिजिटल तकनीक स्वयं में अभिशाप है। यह उचित नहीं होगा कि हम पूरी तकनीकी क्रांति को नकारात्मक दृष्टि से ही देखें, क्योंकि इसी तकनीक ने मानवता को अनेक अभूतपूर्व अवसर भी प्रदान किए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में आज दूरस्थ और वंचित क्षेत्रों के विद्यार्थी भी गुणवत्तापूर्ण शिक्षण-सामग्री तक पहुँच बना पा रहे हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित निदान-प्रणालियाँ रोगों की प्रारंभिक पहचान में चिकित्सकों की सहायता कर रही हैं। दिव्यांगजनों के लिए तकनीक ने संचार और स्वावलम्बन के नए द्वार खोले हैं। वीडियो कॉलिंग जैसी सुविधाओं ने परदेस में बसे परिवारजनों को अपनों के निकट होने का अनुभव कराया है—किसी विदेश में कार्यरत पुत्र के लिए यह संभव हो पाया है कि वह अपने वृद्ध माता-पिता का चेहरा प्रतिदिन देख सके, उनकी कुशलता जान सके। यह तकनीक की वही शक्ति है, जो उचित दिशा में प्रयुक्त होने पर दूरियों को पाटने का कार्य भी करती है।

अतः वास्तविक प्रश्न तकनीक के अस्तित्व का नहीं, अपितु उसके संतुलित एवं विवेकपूर्ण उपयोग का है। जिस प्रकार अग्नि भोजन पकाने के काम भी आती है और विनाश भी कर सकती है, उसी प्रकार कृत्रिम बुद्धिमत्ता और सोशल मीडिया का प्रभाव भी हमारे उपयोग की मात्रा, उद्देश्य और विवेक पर निर्भर करता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम तकनीक को जीवन का साधन बनाएँ, साध्य नहीं।

जब तकनीक मानवीय सम्बन्धों को सुदृढ़ करने में सहायक बनती है—जैसे परिवारजनों से संपर्क बनाए रखने में, ज्ञानवर्धन में, अथवा आपातकालीन सहायता में—तब वह वरदान है। परन्तु जब वही तकनीक वास्तविक संवाद का स्थान ले लेती है, प्रत्यक्ष सम्बन्धों को विस्थापित कर देती है, तब वह धीरे-धीरे अभिशाप में परिवर्तित हो जाती है। यह विवेक ही है, जो किसी भी साधन को वरदान अथवा अभिशाप बनाता है, और यही विवेक आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

समाधान के मार्ग

यह चिंतन केवल समस्या को इंगित करने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, अपितु इसका समाधान खोजना भी उतना ही आवश्यक है। सर्वप्रथम, पारिवारिक स्तर पर सचेत प्रयास आवश्यक हैं। प्रत्येक परिवार को दैनिक जीवन में "स्क्रीन-मुक्त समय" निर्धारित करना चाहिए—विशेषकर भोजन के समय और सोने से पूर्व के समय में, जब परिवार के सभी सदस्य एकत्र होकर संवाद कर सकें। सप्ताह में कम-से-कम एक बार पारिवारिक भ्रमण, खेल अथवा सामूहिक गतिविधि आयोजित करने से पारिवारिक बंधन सुदृढ़ हो सकते हैं। माता-पिता को स्वयं भी अपने आचरण से यह उदाहरण प्रस्तुत करना होगा, क्योंकि बच्चे शब्दों से अधिक कर्मों से सीखते हैं। यदि माता-पिता स्वयं ही निरंतर मोबाइल में व्यस्त रहेंगे, तो बच्चों को अनुशासन सिखाना कठिन होगा।

द्वितीय, शैक्षणिक संस्थानों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। विद्यालयों में डिजिटल साक्षरता के साथ-साथ "डिजिटल संयम" की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए, ताकि विद्यार्थी प्रारंभ से ही तकनीक के उचित और सीमित उपयोग को समझ सकें। साथ ही, पुस्तकालय, खेल-कूद, संगीत, कला जैसी गतिविधियों को पाठ्यक्रम में प्रमुखता दी जानी चाहिए, ताकि बच्चों की सृजनात्मक और सामाजिक क्षमताओं का समुचित विकास हो सके। अभी हाल ही में शिकागो विश्वविद्यालय ने अपनी कक्षाओं में एआई को बैन किया है/निषिद्ध किया है। छात्रों को कक्षा में लैपटॉप एवं फोन लाने की इजाजत नहीं है। छात्रों की अपनी बुद्धि का विकास होना चाहिए, जब तक हम उनको ये सब निषिद्ध नहीं करेंगे तब तक कैसे उनकी बुद्धि का विकास होगा।

तृतीय, सामाजिक स्तर पर सामुदायिक कार्यक्रमों, सत्संगों और सांस्कृतिक आयोजनों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जो लोगों को वास्तविक जीवन में परस्पर जोड़ने का कार्य करते हैं। धार्मिक और आध्यात्मिक संस्थाएँ इस दिशा में सराहनीय भूमिका निभा सकती हैं, क्योंकि सत्संग और सामूहिक साधना मनुष्य को न केवल आत्मिक शांति प्रदान करते हैं, बल्कि सामाजिक जुड़ाव भी सुदृढ़ करते हैं।

चतुर्थ, तकनीकी कंपनियों और सरकारों की भी नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि वे ऐसे एल्गोरिद्म और नीतियाँ विकसित करें, जो उपयोगकर्ताओं के मानसिक स्वास्थ्य को प्राथमिकता दें, न कि केवल "स्क्रीन-टाइम" बढ़ाने को। साइबर सुरक्षा जागरूकता अभियान चलाकर लोगों को धोखाधड़ी से बचाव के उपाय सिखाए जाने चाहिए, ताकि डिजिटल संसार अधिक सुरक्षित और विश्वसनीय बन सके।

अंततः, व्यक्तिगत स्तर पर आत्म-अनुशासन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं यह आत्मनिरीक्षण करना चाहिए कि वह प्रतिदिन कितना समय तकनीक में व्यतीत कर रहा है, और क्या वह समय वास्तव में सार्थक है अथवा केवल आदतन बर्बाद हो रहा है। ध्यान, योग और आत्म-चिंतन जैसी प्राचीन भारतीय पद्धतियाँ इस दिशा में अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकती हैं, क्योंकि वे मन को स्थिरता और संतुलन प्रदान करती हैं, जिससे तकनीक की आसक्ति स्वाभाविक रूप से कम होती है।

उपसंहार

निःसंदेह, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और डिजिटल तकनीक ने मानव जीवन को अनेक क्षेत्रों में सुविधाजनक बनाया है—शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार और संचार में इसके योगदान को नकारा नहीं जा सकता। परन्तु प्रत्येक सिक्के के दो पहलू होते हैं, और जब हम इस तकनीकी क्रांति के सामाजिक-भावनात्मक प्रभावों का गंभीरता से विश्लेषण करते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमने सुविधा के बदले में सम्बन्धों की गहराई गँवा दी है। बच्चों की प्राइवैसी के नाम पर उत्पन्न हुई यह दूरी, यह अलगाव, यह भावनात्मक शून्यता, आज के युग की सबसे विकराल सामाजिक समस्याओं में से एक है।

यदि हम इस दिशा में समय रहते सचेत नहीं हुए, तो आने वाली पीढ़ियाँ तकनीकी रूप से तो अत्यंत सक्षम होंगी, परन्तु भावनात्मक रूप से रिक्त और सम्बन्धहीन रह जाएँगी। एक ऐसा समाज, जिसमें प्रौद्योगिकी का ज्ञान तो प्रचुर हो, परन्तु मानवीय संवेदना, करुणा और परस्पर विश्वास का अभाव हो, दीर्घकाल में टिक नहीं सकता। इतिहास साक्षी है कि जिन सभ्यताओं ने भौतिक प्रगति के साथ-साथ मानवीय मूल्यों की उपेक्षा की, वे अंततः भीतर से खोखली होकर विघटित हो गईं। हमें यह स्मरण रखना होगा कि प्रौद्योगिकी हमारे हाथ की रचना है, न कि हमारे भाग्य की नियंता। इसका नियंत्रण सदैव हमारे विवेक के हाथ में रहना चाहिए, न कि इसके विपरीत। अतः आवश्यक है कि हम तकनीक को अपने जीवन का सेवक बनाए रखें, स्वामी नहीं। हमें प्रौद्योगिकी और मानवीयता के बीच एक संतुलन स्थापित करना होगा, जहाँ स्क्रीन हमारे सम्बन्धों की पूरक बने, प्रतिस्थापक नहीं। परिवार पुनः संवाद का केंद्र बने, भोजन की मेज़ पुनः कहानियों और हँसी से गुंजायमान हो, और बच्चे पुनः अपने माता-पिता की गोद में वह सुरक्षा और स्नेह अनुभव करें, जो कोई भी आभासी संसार कभी प्रदान नहीं कर सकता। यही समय की मांग है, और यही आने वाली पीढ़ियों के प्रति हमारा सबसे बड़ा दायित्व भी।

- डॉ. शुद्धात्म प्रकाश जैन



लेखक परिचय

नाम – डॉ. शुद्धात्म प्रकाश जैन
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
जैनिज्म एवं प्राकृत विभाग
के. जे. सोमैया इंस्टिट्यूट ऑफ धर्म स्टडीज़, सोमैया
विद्याविहार विश्वविद्यालय, मुंबई





अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा
शब्दशक्ति

www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुदेशीय संस्था

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

सम्मान-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि

आ...**डॉ. शुद्धात्म प्रकाश जैन**...जी

ने हिन्दी पखवाड़े के अवसर पर आयोजित "एक लेख प्रतियोगिता" में उत्साहपूर्वक सहभागिता करते हुए **समसामयिक विषय पर अपने विचारों** को प्रभावी एवं सार्थक ढंग से अभिव्यक्त किया।

उनकी साहित्यिक **अभिव्यक्ति** एवं रचनात्मक सहभागिता की सराहना करते हुए **अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन** की ओर से यह **सम्मान-पत्र** सादर प्रदान किया जाता है।

आपकी सृजनशीलता एवं साहित्यिक यात्रा के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएँ।

हिन्दी विचारों को विस्तार देती है... समाज को जोड़ती है...

हिन्दी
हमारी पहचान...
हमारी शक्ति...

प्रीति सुराना

समकित सुराना

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
एवं संस्था

डॉ. प्रीति समकित सुराना



शब्द से संवेदन तक...

लेखन से परिवर्तन तक...

